मानस चतुःशताब्दी समारोह

विक्रम सम्वत् 2027 शुरू हुआ है। 'रामचरित मानस' के लाखों लाख भक्त-अनुरक्त 'मानस चतुःशताब्दी समारोह' के लिए पिछले दो-तीन वर्षों से अधीर थे ही, अब उनका मनोरथ पूर्ण होकर रहेगा। सुनते हैं, यह चिर-प्रतीक्षित परम पावन अनुष्ठान पाँच वर्षों

तक चलेगा। हिंदी-भाषी विशाल भूखंड के लगभग आधा दर्जन प्रदेशों पर शासन करने वाली राज्य सरकारें तो 'जनसाधारण' द्वारा आयोजित होनेवाले इस अनोखे 'महायज्ञ' में अपनी-अपनी आहुतियाँ डालेंगी ही, हमारी केंद्रीय सरकार भी पीछे नहीं रहेगी...।

दैनिक 'आज' (काशी) से हमें पता चला कि "अयोध्या से काशी तक एक विशाल शोभायात्रा की योजना बनाई गई है...अंतिम वर्ष में (सम्वत् 2031 दि., सन् 1975 ई. में) पचास हजार से अधिक भक्त-जनों की महाविशाल भीड़ अयोध्या से काशी के लिए प्रयाण करेगी...रास्ते में 16 पड़ाव होंगे और वाराणसी पहुँचकर गंगा-भागीरथी के किनारे अस्सी घाट (तुलसी मंदिर) तक आने पर मानसप्रेमियों की उक्त शोभायात्रा अपने अंतिम लक्ष्य को प्राप्त करेगी।" और साहब आपको मालूम रहना चाहिए कि "इस शोभायात्रा में रामलीला की मंडलियाँ, रामकथा से संबंधित झाँकियाँ और रामचरित मानस की सुसज्जित गद्दी शामिल रहेंगी...।" संतों के प्रवचन होते चलेंगे, रामनाम की धुनें मुखरित होती चलेंगी...।

शुक्रवार को सायंकाल (24 अप्रैल 1970) संकट मोचन मंदिर (काशी) के महंत श्री वीरभद्र मिश्र जी अपने नगर के पत्र-प्रतिनिधियों से यह सब विस्तारपूर्वक बतला चुके हैं। हिंदी के बड़े-छोटे सैकड़ों समाचारपत्र (दैनिक और साप्ताहिक) पिछले दस-बारह महीनों से 'मानस चतुःशताब्दी' के प्रति जनता को उत्साहित करने में लगे हैं...। 'रामचरित मानस' के हजारों पेशेवर कथावाचक मन-ही-मन थिरक रहे होंगे, उनकी कमाई 'चौथी शताब्दी-पूर्ति' वाले इस विराट यज्ञ के दिनों में जाने कितनी गुनी ज्यादा हो जाएगी !

हमने बड़ी गहराई से 'मानस चतुःशताब्दी समारोह' के बारे में सोचा है...। कलम उठाने से पहले संत प्रवर तुलसीदास की छवि बार-बार ध्यान में बिठाने की कोशिश की है ! जितना कुछ हमें तुलसी बाबा की जीवन-कथा के सिलसिले में मालूम हो सका है, तदनुसार उनका व्यक्तित्व यों तो मुझे काफी आकर्षक लगता है। वह अकिंचन पिता और बदनसीब माँ के पुत्र थे। जन्मते ही दरिद्रता का अभिशाप तुलसीदास पर मँडराने लगा होगा...।

मगर पचास वर्ष की उम्र के बाद ? अच्छे-खासे महंत की भूमिका में आ गए थे न ? वर्णाश्रम (सनातन) धर्म के पुनरुद्धार का बीड़ा उठा लिया था आपने ! लोगों से संतजी ने साफ-साफ कहा—"पूजिय विप्र ग्यान-गुन हीना" यानी शूद्र अगर पठित भी हो तो उसको आगे नहीं बढ़ने दो...यानी, बेचारे तुलसीदास की भाव-भूमिका विवेचन करने नहीं बैठा हूँ इस समय ! हाँ, इतना तो जोर देकर के प्रबुद्ध पाठकों को बतलाना ही चाहूँगा कि हमारे करोड़ों-करोड़ 'शूद्र' भाई 'रामचरितमानस' को कभी खुले दिल-दिमाग से अपना नहीं सकेंगे। हिंदी भाषा-भाषी बहुजन समाज को ब्राह्मणशाही प्राचीरों की दुर्लंघ्य-दुर्भेद्य परिधि के अंदर नियतिवाद की पीनक में पड़े रहने का 'अक्षय-पाठ' पढ़ानेवाला यह 'महाकाव्य' शोषण और प्रवंचना की नई-पुरानी बुनियादों को हिला पाएगा क्या ? कबीर और नानक की बराबरी में बिठलाकर तुलसीदास से जवाब-तलब करो तो आपको असलियत का पता चल जाएगा।

तुलसीदास ने ढेर सारी अच्छी-अच्छी बातें 'लोक-भाखा' (अवधी) में कहने की हिम्मत की...। उन्होंने दारिद्र्य को ही दशानन (रावण) बतलाया...। कभी किसी नवाब या राजा के दरबार में हाजिरी नहीं बजाई...और, इसीलिए संतशिरोमणि तुलसीदास परम प्रगतिशील थे, डॉक्टर शर्मा (रामविलास) का यह रुख हमें कभी नहीं जँचा। अपनी 'अंतरात्मा की आवाज' तो जाने कब से उसी मूर्तिभंजक औघड़ के पक्ष में रही है, जिसे कबीर कहते हैं...। फिर, यह भी नहीं कि बेचारा कबीर आज के अर्थों में 'समाजवादी' करार दिया जाए। हाँ, साहब, ऐसा न समझ लो आप !

हजारों हजार रामायणी (कथावाचक) 'मानस चतुःशती' के दर्म्यान जनसाधारण को परम्परावाद की घुट्टी पिलाते घूमेंगे। केंद्रीय और प्रादेशिक सरकारों के छोटे-बड़े मंत्री, विश्वविद्यालयों के उप-कुलपति, साहित्य के प्राध्यापक एवं आचार्यगण ''चतुःशती' की बयार में डोलते फिरेंगे। अलग-अलग घाटों पर जमे पंडे दूर से ही यजमानों को आवाज देंगे—

''मज्जन फल पेखिय ततकाला।
काक होय पिक, बकहुँ मराला।।''

जी हाँ, 'चतुःशती समारोह' चूँकि पाँच वर्षों तक चलता रहेगा, अपने इस विशाल क्षेत्र (हिंदीभाषी भू-खंड) के अंदर जितने 'काक' हैं सभी 'पिक' हो जाएँगे, 'बक' तो फिर 'मराल' हो के रहेंगे। उधर अपने समाज का बहुजन-वर्ग 'बेबसी और जहालत के समन्दर में' इसी तरह डूबता-उतराता रहेगा...क्योंकि महँगाई इसी तरह बढ़ती रहेगी। पुलिसवाले इसी तरह प्रदर्शनकारियों पर लाठियाँ बरसाते रहेंगे। कथावाचकों की बिरादरी हलवा-पूड़ी और खीर का भोग लगा-लगाकर फूलती रहेगी। 'भंडोच' तो अभागे अलग ही खड़े रहेंगे...! ये कौन हैं भाई ? भंडोच ! जी हाँ, नया शब्द गढ़ लिया है हमने अपनी सुविधा के लिए...। 'भंडोच' यानी भंगी, डोम, चमार। समझ गए अब तो ?

'मानस चतुःशताब्दी' से भला भँडोच को क्या !

आए दिन महापुरुषों के नाम शताब्दी, द्विशताब्दी, त्रिशताब्दी, पंचशताब्दी समारोह उजागर होते रहते हैं, उन बेचारों की किस्मत के मुताबिक लाख-दो-लाख रुपए से लेकर पचास या सौ लाख तक की रकमें सरकारी खजानों से निकलती ही रहती हैं। इन शताब्दी-द्विशताब्दी समारोहों के पीछे पंडों-पुरोहितों के नए-नए 'गोत्र' उभरते रहते हैं। आधा नेता, आधा शिक्षित टाइप के स्वार्थी युवक 'समारोह समितियों' के फंदे बिछाकर पहले तो मंचलोभी मिनिस्टरों और सचिवों को फाँसते हैं, फिर उनके इर्द-गिर्द कीर्तिलिप्सु और संपन्न नागरिकों के 'प्रभामंडल' तैयार कर लेते हैं; फिर क्या है, पत्र-पत्रिकाओं में धुआँधार प्रचार शुरू हो जाता है और फिर 'रजतं चन्द्र दैवतं' (मन्दा) की राह खुल जाती है !

हमें यह बात बिलकुल भूल जानी है कि आज से सौ वर्ष पहले या दो सौ-चार सौ वर्ष पहले पैदा होनेवाले किसी भी महामानव का जीवन और कृतित्व अब अपने उन्हीं अर्थों में मौजूदा समाज को अनुप्राणित नहीं कर सकता। सीता सहित राम-लक्ष्मण, राधा-कृष्ण, गौतम-बुद्ध, महावीर वर्धमान, कालिदास, तुलसीदास, रवींद्र...आदि की अस्थियाँ

सचमुच यदि हमारे समक्ष आ ही जाएँ तो कम से कम मैं अपने भाइयों से यही कहूँगा कि इन्हें ले जाओ...गंगा या गोदावरी में सम्मानपूर्वक डाल आओ !

'रामचरितमानस' वस्तुतः हमारी श्रद्धा और प्रीति का कितना हकदार होगा अब ? आज के इस युग में तुलसी बाबा के इस महाकाव्य को कितना आदर देंगे ? इस 'लोकप्रिय' पोथी की कितनी चौपाइयाँ, कितने दोहे-सोरठे-छंद और श्लोक आज हमें ग्राह्य होंगे ? पौराणिक गपोड़ों में निर्दोष मनोरंजन के तौर पर कितने हम अपनाएँगे ? कितने छोड़ देंगे ? चतुर्थ-शताब्दी-समारोह को पाँच वर्षों तक लंबा खींचना किनके दिमाग की उपज हो सकती है ?...साधारण जनता का भला इस 'सुदीर्घ' समारोह से कौन-सा स्वार्थ सधेगा ?

ऐसे-ऐसे बीसियों सवाल इस मौके पर हमारे आपके अंदर यदि न उठें, तो वह कुंद जहनियत का ही सबूत होगा।

हम अपने देश की हुकूमत को 'समाजवादी ढाँचा' वाली या 'समतामूलक आदर्शों के अनुकूल' बनाना चाहते हैं, 'बहुजन हिताय' और 'बहुजन सुखाय' ही हमारे इस अभिनव राष्ट्र की सारी गतिविधियाँ समर्पित हैं...'समूचे समाज का कल्याण' ही हमारे प्रशासन के एकमात्र उद्देश्य हैं...आदि-आदि लुभावनी बातों का अंत नहीं। हम दिन-रात इस प्रकार की बातें सुनते रहने के आदी हो गए हैं। कान तो चिकने हो गए हैं, हमारी दृष्टि-शक्ति भी अपनी सूक्ष्मदर्शिता खो चुकी है।

स्थूल दृष्टि या अदूरदर्शिता के शिकर हम किस हद तक हो चले हैं, यह मालूम करने में या करवाने में किसी 'गंभीर प्रयास' की आवश्यकता पड़ेगी क्या ?

'रामचरित मानस' की एक-एक चौपाई के दस-दस अर्थ बतलानेवाले बीसियों कथावाचक थाइलैंड और मारिशस तक पहुँच-पहुँचकर 'व्यास-पीठों' को गर्मा आते हैं...अपने इस विशाल देश के अंदर भी सैकड़ों सुकंठ 'रामायणी' जी औद्योगिक एवं सांस्कृतिक स्थानों पर महीनों कथावाचन करते घूम रहे हैं। तुलसी बाबा की बदौलत हजारों परिवार 'कथावाचन' की दक्षिणा से ही आनंदपूर्वक अपना निर्वाह कर रहे हैं। ऐसा नहीं समझ लीजिए आप कि हरिजन-गिरिजन तुलसी बाबा को नहीं सुनते हैं या कि सुनने के बाद रामायणी जी को दक्षिणा (आरती के थालों के मार्फत) नहीं देते ! नहीं साहब, वे तो और भी जमकर सुनते हैं और चढ़ावा भी खुले हाथों ही चढ़ाते हैं। हाँ, यह बात और है कि राँची और बस्तर के निबिड़ आरण्यक अंचलों की तरफ कथावाचकों की यह अतिलोभी और आरामतलब बिरादरी कभी अपना रुख नहीं करेगी।

क्या हम हरिजनों-गिरिजनों और अहिंदू भारतीयों के लिए 'रामचरितमानस' का संक्षिप्त तथा सुधरा संस्करण नहीं तैयार कर सकते ? क्या रामकथा के गायन-वाचन पर पुराणपंथियों का ही एकाधिकार सदा के लिए कायम रहेगा ? रामलीला के अभियानों को एशिया महाद्वीप के बहुतेरे देशों ने अपनी-अपनी रुचियों के अनुरूप ढाल लिया है, तो हमीं क्यों इस दिशा में फिसड्डी बने रहें ? आधुनिक युगबोध के अनुकूल सौ-पचास नए रामायणी कथावाचक हमारी संगीत नाटक अकादमी भी तैयार करेगी न ?

इस प्रसंग में यों, कहने को, ढेर सारी बातें दिमाग में आ रही हैं। मगर स्थानाभाव के कारण, यहाँ कुछ एक अतिआवश्यक सुझाव प्रबुद्ध पाठक वर्ग के सामने रख रहे हैं–

(क) विशाल हिंदी प्रदेशों की हमारी सभी राज्य सरकारें (उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, दिल्ली, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश और राजस्थान) अपने-अपने प्रकाशन विभागों द्वारा 'संक्षिप्त एवं सर्वजनोपयोगी रामचरितमानस' का अभिनव संस्करण तैयार करवा के प्रकाशित-प्रसारित करें। शूद्र की निंदा और ज्ञान-गुणहीन ब्राह्मण की प्रशंशावाले अंशों को हटाकर आज की दृष्टि से उदार मनोवृत्तिवाले लोगों को जँचने-रुचनेवाला यह संस्करण चार-छः महीने के अंदर ही जनसाधारण के लिए सुलभ हो।

(ख) इस अभिनव संस्करणवाले 'रामचरित मानस' में कथामूलक सहज-स्वाभाविक अंश ही रहेंगे। पौराणिक अतिरंजनावाले, अवान्तर प्रसंगोंवाले, नामकीर्तिन पर अत्यधिक जोर देनेवाले, भक्ति का झाग छलकानेवाले अंश इस नए 'रामचरित मानस' में नहीं होंगे।

(ग) रामकथा के शैव-शक्त-जैन-बौद्ध या अन्य रूपांतर भी परिशिष्ट के तौर पर 'संक्षिप्त रामचरितमानस' के साथ जुड़े हों।

(घ) लाखों और करोड़ों की संख्या में (छोटी-मझोली-मोटी साइजों में) 'रामचरित मानस' छापने-बेचनेवाले प्रकाशन-संस्थान 'गीता प्रेस, गोरखपुर' जैसे फर्म को हमारी केंद्रीय सरकार सस्ती रेट पर बढ़िया कागज आदि अकूत सुविधाएँ वर्षों से देती चली आ रही है। हमारी राज्य सरकारों से भी उसे बहुतेरी सुविधाएँ प्राप्त हैं। रामकथा-प्रेमी 'शूद्र' हिंदू परिवारों और 'विधर्मी' हिंदीभाषियों को रुचने-जँचनेवाला 'संक्षिप्त अभिनव रामचरितमानस' प्रकाशित-प्रचारित करके गीता प्रेस (गोरखपुर) के अधिकारी 'चतुर्थ शताब्दी समारोह' के इस अवसर पर अपनी व्यापक सदाशयता का परिचय दें।

(ङ) नाम-कीर्तन या भजन को ही सभी दुखों का अचूक इलाज घोषित करनेवाले पदों का गायन केवल उन्हीं गोष्ठियों में हुआ करे, जहाँ बस वृद्ध-वृद्धाएँ ही उपस्थित रहें।

भारतीय समाज चार सौ वर्ष बाद अब वही नहीं रहा जो वह तुलसीदास के युग में था। राजनीति, वाणिज्य, व्यापार, शिक्षा-दीक्षा, चल-अचल संपत्ति, शिल्पकला, यातायात, ग्राम-नगर, भौगोलिक इकाइयाँ, जनसंख्या...पिछली चार शताब्दियों में हमारा सब कुछ बदल गया है। अगले सौ-पचास वर्षों में परिवर्तन की रफ्तार और अधिक तेज होगी, इतनी तेज कि आज हम उसकी कल्पना तक नहीं कर सकते ! डाक-तार, रेल-बस-विमान-जहाज, बिजली-गैस, रेडियो-टेलीविजन, राडार-राकेट आदि वैज्ञानिक उपलब्धियों का जादुई प्रभाव हमारे मौजूदा जीवन पर पड़ रहा है। हम आत्महत्या भले कर लें, परिवर्तन और विप्लव की गति को रोकना हमारे बूते की बात नहीं है। यह नहीं चल सकता कि रहन-सहन की सुविधा या आराम के लिहाज से, यानी भौतिक आनंद लाभ की दृष्टि से तो हम 'अति आधुनिक' एवं 'आदर्श नागरिक' हों, मगर वैचारिक स्तर पर तथा आपसी व्यवहारों में चार सौ वर्ष पिछड़ जाएँ ! कोटि-कोटि जनों का क्लेश-निवारण भला 'रामचरितमानस' कैसे कर सकता है।

"उत्तर भारत में कोटि-कोटि जनों के लिए 'रामचरितमानस' आज भी अपरिहार्य

है''—कई मित्रों ने समय-समय पर हमसे कहा है, ''वह हिंदी-भाषी जनता का बाइबिल भी है, कुरान भी, वेद भी है, पुराण भी है। रामचरितमानस हमारे लिए क्या नहीं है, सभी कुछ है...''

''जी हाँ, सभी कुछ है''—हमने भी समय-समय पर दुहरा दिया है ! चिर बिछोह के बाद होनेवाली मुलाकातों को कलहान्तरित होने दें भला !...मन ही मन लेकिन देर तक सोचता रह गया हूँ : रामचरितमानस हमारी जनता के लिए क्या नहीं है ? सभी कुछ है ! दकियानूसी का दस्तावेज़ है...नियतिवाद की नैया है...जातिवाद की जुगाली है। सामंतशाही की शहनाई है ! ब्राह्मणवाद के लिए वातानुकूलित विश्रामागार...पौराणिकता का पूजा-मंडप...वह क्या नहीं है ! सब कुछ है, बहुत कुछ है ! रामचरितमानस की बदौलत ही उत्तर भारत की लोकचेतना सही तौर पर स्पंदित नहीं होती। 'रामचरित मानस' की महिमा ही जनसंघ के लिए सबसे बड़ा भरोसा होती है हिंदीभाषी प्रदेशों में।

जहालत, गरीबी, रुचिशून्यता, रूढ़ि-मोह आदि घातक बीमारियाँ उत्तर भारत में रहनेवाले बहुसंख्यक समाज को निस्तेज और निर्बल बना चुकी हैं। सत्तर प्रतिशत लोग जैसे-तैसे गुजारा कर रहे हैं। वर्गों-उपवर्गों, जातियों-उपजातियों के बीच विषमता की इन विकराल खाइयों को क्या रामचरितमानस का वह पोथा पाट देगा ? काश, वैसा होता ? फिर तो हम बहुतरे झमेलों से आनन-फानन छुटकारा पा लेते !

'रामचरितमानस' की 'नैतिक और आध्यात्मिक उपयोगिता' व्यक्तिगत तथा समष्टिगत रूपों में, आंशिक तौर पर अभी एक-आध शताब्दी तक बनी रहेगी। ढलती उम्र के सामने लोग 'मानस' का पारायण करके अथवा पेशेवर कथावाचकों से सुनकर अभी चिरकाल तक तसल्ली हासिल करते रहेंगे। इसमें भला क्या तो शासन को आपत्ति होगी, क्या समाज को !

पिछले दस-पंद्रह वर्षों से ही शताब्दी समारोहों का सिलसिला हमारे यहाँ इस तरह धूम-धड़ाके से चालू हुआ है। चौराहों पर, पार्कों में, सार्वजनिक संस्थाओं के अंदर मूर्तियाँ स्थापित करने की होड़ मच गई है। स्मारक स्टाम्प भी अंधाधुंध निकलने लगे हैं। संतों-महापुरुषों-मनीषियों-कवियों-हुतात्माओं की स्मृति चर्चा राज्यपालों-कुलपतियों- मंत्रियों-सचिवों के लिए सुखद साबित हो रही है। स्मृति-रक्षामूलक समारोहों को सविधि एवं साडंबर संपन्न करने के लिए सुशिक्षित पंडे केंद्रीय महाप्रभुओं के ही मुंडन से कार्य आरंभ करते हैं।...

अभी-अभी गुरुनानक और महाकवि ग़ालिब के नाम पर लगभग सौ लाख रुपए (100,00,000 रु.) हमने यानी हमारी सरकारों ने और जनता ने फूँक-तापकर उड़ा डाले हैं ! तो फिर संत तुलसीदास ने ही भला कौन-सा कूसर किया था ? देखें, किस मुँह से और माई का कौन-सा लाल 'ना' करता है ! छः-सात हिंदी-भाषी राज्यों की हमारी सरकारें कुल मिलाकर क्या डेढ़-दो करोड़ की रकम भी नहीं निकालेंगी ? और केंद्रीय सरकार आखिर किस मर्ज की दवा है ?...'रामचरितमानस' की चतुर्थ शताब्दी पूर्ति का समारोह लगातार चार-पाँच वर्षों तक मनाया जाएगा न ? जी हाँ, धुआँधार अपीलें

निकल रही हैं ! महाकुंभ के अवसर पर जैसी अपार भीड़ जुटती है, वैसी ही भीड़ अयोध्या और काशी में जुटेगी...देख लीजिएगा ! इस महान समारोह के विरोध में आपने कलम उठाई ? आपको गलित कुष्ठ होगा ! आपका यह हाथ गलकर गिर पड़ेगा !... समारोह के पंडे किस तरह नाराज हो उठे, देखा ?

सच...सचमुच ही तुलसी बाबा मुझ पर कुपित हो उठे हैं ! मैं महसूस कर रहा हूँ, संत शिरोमणि ने मेरी तरफ से गर्दन फेर ली है...मगर बाबा का क्रोध तो सात्विक है न ? उन्हें मैं 'विशाल आत्मा' वाला महाकवि मानता हूँ। अंत तक वही मानता रहूँगा। उनके युग की मजबूरियों और सीमाओं का अंदाज लेकर सोचता हूँ तो बाबा की स्मृति में बार-बार यह मस्तक झुकता है ! उनके व्यक्तित्व में तनिक भी खोट मुझे नजर नहीं आती है...जन्म तो आखिर ब्राह्मण वंश में ही हुआ था न ! नानक या कबीरवाली भला प्रखरता कहाँ से लाते ?

'रामचरितमानस' के प्रेमी (अंधभक्त नहीं) बहुजनहित और सत्य-शोधन की दृष्टि से इस महाकाव्य की एक-एक पंक्ति को वास्तविकता की कसौटी पर कसेंगे—आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों यह 'अप्रिय कार्य' उन्हें करना ही पड़ेगा। 'भारत साधु-समाज' के पदाधिकारियों का यह कर्त्तव्य है कि 'रामचरितमानस' की छान-बीन के लिए वे तत्काल राष्ट्रवादी-समाजवादी विद्वानों की (और विदुषियों की भी) एक उप-समिति गठित करें। इस उपसमिति में अब्राह्मण साधु भी रखे जाएँ।

रामलीला के सिलसिले में पिछड़ी जातियों के भी तरुण अवश्य ही लिए जाएँ। कथावाचक की ट्रेनिंग भी उन्हें दी जाए। उच्चवर्ग के संत-महंत यदि आनाकानी करें तो कथावाचन की अनुमति के लिए लाइसेंस की व्यवस्था स्वायत्त-शासन विभाग अपने हाथों में ले। शूद्र-वर्ग और स्त्री-वर्ग को 'सहज अपावन' और 'अति अधम' बतलानेवाली एक भी पंक्ति जिस संस्करण में छपी हो, 'रामचरितमानस' का वह संस्करण गैर-कानूनी घोषित हो जाए। हरिजन-गिरिजन विधायक और संसद-सदस्य इस दृष्टि से सतर्क रहें। ब्राह्मणशाही और सामंतशाही के धूर्त प्रतिनिधि ऊँचे-ऊँचे पदों पर जमे बैठे हैं। अब भी मनुस्मृति और रामचरितमानस को ही वे अपने असली 'नीति ग्रंथ' मानते हैं। 'समाजवाद' और 'आर्थिक समता' आदि बहुतेरे पवित्र शब्द उनके मुख से निकलने पर अपना सही मतलब खो बैठे हैं !

हिंदीभाषी राज्यों के अंदर छोटे-बड़े सैकड़ों शहर हैं, हजारों कस्बे हैं, लाखों गाँव हैं...सर्वत्र रामचरितमानस के पुराणपंथी अनुशासन का बोलबाला है। परस्पर विरोधी बातों के समर्थन में 'मानस' की चौपाइयाँ और दोहे सुना-सुनाकर नागरिकों की सिट्टी-पिट्टी गुम कर देनेवाले निरक्षर देहाती आपको वहाँ एक-एक चौपाल में मिल जाएँगे ! गरीबी, अज्ञान; जोर-जुल्म, प्रवंचना, और बेइन्साफी को 'विधाता की देन', 'नियतिनटी की लीला', 'पूर्वजन्म के बुरे कर्मों का कुफल' मानकर सब कुछ बर्दाश्त करते जानेवाले तथाकथित इन्सानों की संख्या 15-20 करोड़ तक पहुँचा दी है 'रामचरित मानस' ने ! जी हाँ, सारी जिम्मेदारी इसी पोथे पर डालूँगा मैं !

समाजवाद के हमारे सपने तब तक अधूरे ही रहेंगे, जब तक 'मानस' का मोह नहीं टूटता।

पिछड़ी जातियों में पैदा होकर भी सौ किस्म की मजबूरियाँ झेलनेवाले साठ प्रतिशत इन्सान तब तक सही अर्थों में 'स्वतंत्र और स्वाभिमानी' भारतीय नहीं होंगे, जब तक 'रामचरितमानस' सरीखे पौराणिक संविधान ग्रंथ की कृपा से प्रभु जातीय भारतीयों की गुलामी का पट्टा उनके गले में झूलता रहेगा।

[मुक्तधारा, 6 मई, 30 मई, 20 जून, 1970]